पल्लव राजवंश

[PALLAVA DYNASTY]

भारत के सुदूर दक्षिण में पल्लव और चोल-राजवंशों का उत्थान हुआ। साधारणतया दक्षिण भारत के पठार को कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों द्वारा विभाजित किये गये भारतीय उप-महाद्वीप के सबसे नीचे के भाग को सुदूर दक्षिण पुकारा गया है।

सुदूर-दक्षिण के इस भाग को तमिल-प्रदेश भी पुकारा गया है। यहाँ के प्राचीनतम राजवंशों में चोल, पाण्ड्य और चेर राजवंश प्रमुख रहे। संगम (जो विद्वानों की साहित्यिक गोष्ठियाँ थी)—साहित्य से प्राचीन सुदूर दक्षिण के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। उसके अनुसार चोल, पाण्ड्य और चेर शासकों ने राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के कारण आपस में एक लम्बे समय तक संघर्ष किया। परन्तु इनमें से कोई भी सुदूर दक्षिण में एक शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित करने में सफल न हो सका। सर्वप्रथम इस कार्य की पूर्ति पल्लव-शासकों ने की। सातवाहन-वंश के पतन के पश्चात् उनके राज्य के दक्षिण-पूर्वी भाग पर पल्लव-वंश ने अपना अधिकार कर लिया और 'काँची' को अपनी राजधानी बनाया।

पल्लव-वंश की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विचार प्रकट किये हैं। यूरोपियन इतिहासकारों ने पल्लवों की उत्पत्ति पार्थियन पल्लवों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया। परन्तु आधुनिक समय में इस विचार को कोई नहीं मानता। कुछ अन्य विद्वानों ने उन्हें

चोल-नाग-वंश से उत्पन्न बताया है। परन्तु अधिकांशतया यह विश्वास किया जाता है कि वे टोण्डियार नामक स्थान पर रहने वाले स्थानीय निवासी थे। तमिल शब्द 'टोण्डियर' को संस्कृत में पल्लव पुकारा गया है। इसी से यह वंश पल्लव-वंश कहलाया। काँची के पल्लव राज्य का प्राथमिक उल्लेख **हरिषेण** लिखित *प्रयाग प्रशस्ति* तथा खानच्वाड़ के यात्रा विवरण में मिलता है। इस कुल के बारे में कुछ विद्वानों का कथन है कि ये क्षत्री थे। परन्तु **डॉ. जायसवाल** इनको वाकाटक-वंश से सम्बन्धित शुद्ध ब्राह्मण मानते हैं। **डॉ. दशरथ शर्मा** ने भी पल्लवों को ब्राह्मण बताया है। **के. पी. जायसवाल** के अनुसार, "पल्लव सम्भवतः वाकाटक राजवंश की ही एक उपशाखा थी। दोनों ही राजवंशों का सम्बन्ध भारशिव-नागों से था।"

पल्लव-शासकों की उत्पत्ति का अनुमान तीसरी सदी के मध्य से किया जाता है। शिवस्कन्दवर्मन, विष्णुगोप आदि इनके प्रारम्भिक महत्वपूर्ण शासक थे। परन्तु पल्लवों की महानता का काल छठी सदी के अन्तिम चरण में उनके शासक सिंहविष्णु के समय से आरम्भ हुआ।

1. विभिन्न शासक (Various Rulers)

शिवस्कन्दवर्मन् (275 ई. लगभग)—प्राथमिक पल्लववंशीय राजाओं में शिवस्कन्दवर्मन् के विषय में संयोगवश कुछ विशेष सूचनाएँ अब उपलब्ध हो सकी हैं। पुरातात्विक खोजों के आधार पर इस नरेश के कुल तीन सुरक्षित अभिलेखों में उसको क्रमशः युवराज, राजा बनने तथा अश्वमेध, बाजपेय एवं अग्निष्येम आदि यज्ञों का कर्ता बताया गया है। वह एक शक्तिशाली, महान एवं वैदिक ब्राह्मण धर्मावलम्बी राजा था। शिवस्कन्दवर्मन् तथा चौथी सदी में काँची राज्य के नृपति विष्णुगोप के बीच शासन करने वाले पल्लव राजाओं के विषय में कोई सूचना प्राप्त नहीं हो सकी है।

सिंहविष्णु (575-600 ई.)—उसके समय में अर्द्ध-बर्बर और ब्राह्मण-विरोधी 'कलभरास' जाति ने तमिल-प्रदेश पर आक्रमण किया। सिंहविष्णु को 'सिंह विष्णुयोत्तर युग' एवं अवनिसिंह भी कहा जाता था। सिंहविष्णु ने उनको परास्त किया। उसने अपने पराक्रम से सम्पूर्ण चोलमण्डल को जीत कर कावेरी तक अपना राज्य विस्तार किया। वह कलानुरागी था वैष्णव धर्म में उसकी गहरी आस्था थी। उसने साहित्य और कला को संरक्षण दिया। संस्कृत का महान् कवि भारवि उसके दरबार में था और उसके समय में महाबलीपुरम् नगर कला का केन्द्र-स्थान बन गया था। उसके समय में ही मामल्लपुरम् के आदिवराह गुहा मन्दिर का निर्माण किया गया, इसमें सिंहविष्णु और उसकी दो रानियों की प्रतिमा स्थापित की गयीं।

महेन्द्रवर्मन् प्रथम (600-630 ई.)—सिंहविष्णु के पुत्र महेन्द्रवर्मन् के समय में पल्लवों और चालुक्यों का संघर्ष आरम्भ हुआ क्योंकि दोनों ही दक्षिण भारत में अपनी-अपनी शक्ति के विस्तार के लिए उत्सुक थे। पल्लवों ने कदम्बों के साथ मिलकर चालुक्य-शासक पुलकेशियन् द्वितीय की शक्ति के विस्तार को रोकने का प्रयत्न किया। इस कारण पुलकेशियन् ने पल्लव-राज्य पर आक्रमण किया और बहुत अन्दर तक प्रवेश कर गया। काँची से 15 मील दूर महेन्द्रवर्मन् ने उससे युद्ध किया। इससे उसकी राजधानी काँची की सुरक्षा तो हो गयी परन्तु पुलकेशियन् ने उससे उसके उत्तरी प्रान्त वेंगी को छीन लिया जहाँ उसने अपने भाई विष्णुवर्धन को राज्यपाल नियुक्त किया जिसने पूर्वी चालुक्यों के राज्य की स्थापना की।

महेन्द्रवर्मन् साहित्य और ललित-कलाओं का प्रेमी था। वह स्वयं कवि और गायक था। उसने स्वयं *मत्तविलास-प्रहसन* तथा *भगवदज्जुकीयम्* आदि नामक संस्कृत भाषा के ग्रन्थ को लिखा और यह विश्वास किया जाता है कि उसने संगीतशास्त्र पर आधारित ग्रन्थ

कुडमिमालय की रचना की। उसने त्रिचनापल्ली, चिंगिलपुट और अर्काट में बहुत से मन्दिरों को बनवाया जो पहाड़ों की चट्टानों को काटकर बनाये गये। उसने महेन्द्रवर्मन् नामक नगर बसाया और उसी के निकट एक झील का निर्माण किया। उसने चित्रकला को भी प्रोत्साहन दिया। वह प्रारम्भ में जैन था परन्तु बाद में शैव बन गया था।

नरसिंहवर्मन् प्रथम (630-668 ई.)—महेन्द्रवर्मन् का पुत्र नरसिंहवर्मन् एक महान् शासक हुआ। उसके समय में भी पल्लवों का बादामी के चालुक्यों से संघर्ष हुआ। पुलकेशियन् द्वितीय ने उसके राज्य पर आक्रमण किया परन्तु नरसिंहवर्मन् ने उसे तीन स्थानों पर परास्त किया जिसके कारण पुलकेशियन् को वापस लौटना पड़ा। इसके पश्चात् नरसिंहवर्मन् ने चालुक्य-राज्य पर आक्रमण किया और 642 ई. में उसकी राजधानी बादामी (वातापी) पर अधिकार कर लिया। इन्हीं युद्धों में पुलकेशियन् द्वितीय मारा गया और पल्लवों ने चालुक्य-राज्य के दक्षिणी भाग पर अधिकार कर लिया। नरसिंहवर्मन् ने चालुक्यों की शक्ति को दुर्बल करके मैसूर तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया। इसके पश्चात् उसने चोल, चेर तथा पाण्ड्य शासकों को परास्त करके दक्षिण की ओर अपने राज्य का विस्तार किया। उसने अपने समर्थक मानवर्मन् की सहायता के लिए लंका पर समुद्री मार्ग से दो बार आक्रमण किये और उसे लंका के सिंहासन पर बैठाने में सफलता पायी। परन्तु 665 ई. में चालुक्य-शासक विक्रमादित्य ने नरसिंहवर्मन् को पराजित करके अपने वंश के खोये हुए प्रदेशों को पुनः प्राप्त कर लिया। तब भी नरसिंहवर्मन् ने पल्लवों के एक विस्तृत साम्राज्य का निर्माण करने में सफलता प्राप्त की। नरसिंहवर्मन् ने मामल्लपुरम् में अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया जो अब मामल्लपुरम् के रथ-मन्दिर कहलाते हैं। उसने त्रिचनापल्ली में भी अनेक मन्दिर बनवाये। उसके समय में चीनी-यात्री युवान च्वांग काँची गया था और उसने वहाँ का बहुत अच्छा वर्णन लिखा।

नरसिंहवर्मन् के पुत्र **महेन्द्रवर्मन् द्वितीय** (668-670 ई.) ने केवल दो वर्ष शासन किया। उसके पश्चात् उसका पुत्र **परमेश्वरवर्मन् प्रथम** (670-700 ई.) सिंहासन पर बैठा। उसके समय में चालुक्य विक्रमादित्य प्रथम ने काँची पर आक्रमण करके उसे जीत लिया और त्रिचनापल्ली की ओर बढ़ा। परन्तु पेरुवलनल्लूर नामक स्थान पर परमेश्वरवर्मन् प्रथम ने उसे परास्त किया और पल्लव-राज्य को सुरक्षित करने में सफलता पायी। विक्रमादित्य को अपने राज्य में वापस जाना पड़ा।

नरसिंहवर्मन् द्वितीय (700-722 ई.)—परमेश्वरवर्मन् के पुत्र नरसिंहवर्मन् द्वितीय का समय शान्ति का रहा। उसके समय में राज्य में समृद्धि बढ़ी। उसने चीनी सम्राट के दरबार में अपना राजदूत भेजा। उसने काँची में कैलाशनाथ मन्दिर और महाबलीपुरम् के समुद्र-तट पर कई सुन्दर मन्दिर बनवाये। उसने मन्दिर निर्माण शैली में एक नई शैली राजसिंह शैली का प्रयोग किया। अतः इस मन्दिर को 'राजसिंहेश्वर मन्दिर' भी अभिहित किया गया है। वह विद्वानों को आश्रय प्रदान करता था। उसके समय में विद्वान **दण्डिन** ने *दशकुमारचरित* नामक काव्य-ग्रन्थ की रचना की।

महेन्द्रवर्मन् तृतीय (लगभग 722 ई. से 728 ई. तक)—सम्भवतः नरसिंहवर्मन् द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र महेन्द्रवर्मन् तृतीय ने पिता की मृत्यु के बाद राजसिंहासन प्राप्त किया। लेकिन अल्पकाल में ही उसकी मृत्यु हो गयी। उसने काँची के प्रसिद्ध कैलाश नाथ मन्दिर में एक बहुत छोटे परन्तु भव्य शिवमन्दिर (मठ) का निर्माण करवाया।

परमेश्वरवर्मन् द्वितीय (लगभग 728-730 ई. तक)—परमेश्वरवर्मन् द्वितीय नरसिंहवर्मन् द्वितीय का छोटा पुत्र था उसने 728 ई. के लगभग राजसिंहासन को सुशोभित किया। इसके शासनकाल में वातापि के चालुक्य नरेश विक्रमादित्य द्वितीय ने गंग शासक दुर्विनीत ऐरयप्प की सहायता से पल्लवों पर आक्रमण किया था। इसमें चालुक्य नरेश को बहुत धन प्राप्त हुआ। सम्भवतः इस युद्ध में परमेश्वरवर्मन् मारा गया।

नन्दिवर्मन् द्वितीय (730-800 ई.)—नन्दिवर्मन् परमेश्वरवर्मन् द्वितीय का पुत्र न था बल्कि सम्बन्धी था। उसे चुनाव के द्वारा शासक बनाया गया था। इस कारण कुछ राजपुत्रों ने उसका विरोध किया। परन्तु वे असफल हुए। नन्दिवर्मन् के समय में निकट के पड़ौसी राज्यों ने पल्लवों पर आक्रमण किये। सर्वप्रथम पाण्ड्य-शासक राजसिंह ने उसके राज्य पर आक्रमण किया। परन्तु उसे वापस लौटना पड़ा। राजसिंह के उत्तराधिकारी के समय में भी यह संघर्ष चलता रहा और अन्त में पाण्ड्य-शासक जटिल परान्तिक ने नन्दिवर्मन् से कोंगु को छीनने में सफलता पायी। चालुक्य-शासक विक्रमादित्य द्वितीय ने भी नन्दिवर्मन् की दुर्बलता का लाभ उठाया और कुछ समय तक काँची को अपने अधिकार में रखने में सफलता पायी। विक्रमादित्य के पुत्र कीर्तिवर्मन् ने दोबारा पल्लव-राज्य पर आक्रमण किया और उसकी सम्पत्ति को लूटा। 750 ई. के लगभग राष्ट्रकूट-शासक दन्तिदुर्ग ने भी पल्लवों पर आक्रमण करके उन्हें परास्त किया। नन्दिवर्मन् ने दन्तिदुर्ग से अपनी पुत्री का विवाह करके अच्छे सम्बन्ध बनाये। बाद में भी उसे राष्ट्रकूट-सम्राट ध्रुव को प्रसन्न करने के लिए बहुत धन देना पड़ा। नन्दिवर्मन् की एकमात्र सफलता गंग-राज्य के विरुद्ध रही जिसके कुछ भाग पर उसने अधिकार कर लिया।

नन्दिवर्मन् के समय में हुए पाण्ड्य, चालुक्य और राष्ट्रकूट राज्यों के आक्रमणों ने पल्लव-राज्य की शक्ति को पर्याप्त दुर्बल कर दिया।

नन्दिवर्मन् के पश्चात् **दन्तिवर्मन्** (800–846 ई.) शासक हुआ। उसके समय में राष्ट्रकूटों और पाण्ड्यों के आक्रमण हुए तथा पाण्ड्यों ने उससे कावेरी-क्षेत्र छीन लिया। दन्तिवर्मन् के पश्चात् **नन्दिवर्मन् तृतीय, नृपतुंगवर्मन्** और **अपराजित** शासक हुए। अपराजित ने 880 ई. में पाण्ड्यों को पराजित करने में सफलता पायी। परन्तु वह पल्लवों का अन्तिम सफल युद्ध था। इस युद्ध में अपराजित के चोल-वंशीय सामन्त आदित्य ने उसकी बड़ी सहायता की थी। उसी आदित्य ने 893 ई. के लगभग अपराजित को मारकर पल्लव-राज्य पर अपना अधिकार कर लिया और चोल-राजवंश के साम्राज्य की नींव डाली।

2. पल्लव-वंश की उपलब्धियाँ (Achievements of Pallava Dynasty)

पल्लवों की शासन-व्यवस्था बहुत कुछ गुप्त और मौर्य-सम्राटों की शासन-व्यवस्था के समान थी। उसमें सम्राट राज्य का प्रधान था। वह बड़ी-बड़ी पदवियाँ धारण करता था और राज्य की सम्पूर्ण शक्तियाँ उसमें केन्द्रित थीं। परन्तु सम्राट निरंकुश न थे बल्कि प्रजा की भलाई करना अपना प्रमुख कर्तव्य मानते थे। सम्राट की सहायता के लिए विभिन्न मन्त्री और राज्य के अन्य बड़े पदाधिकारी होते थे। सम्पूर्ण राज्य को राष्ट्रों, कोट्टमों और गाँवों में बाँटा गया था। पल्लव-शासकों ने एक अच्छी शासन-व्यवस्था स्थापित करने में सफलता पायी थी।

पल्लव-शासक हिन्दू धर्म को मानने वाले थे। उन्होंने विभिन्न यज्ञ किये और विष्णु, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी आदि हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियों को मन्दिरों में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने संस्कृत साहित्य और हिन्दू धर्म को संरक्षण प्रदान करके दक्षिण-भारत में आर्य-संस्कृति

के प्रसार को पूरा कर दिया। 8वीं सदी के भारत में आरम्भ हुए धार्मिक आन्दोलन पल्लव-राज्य में विकसित हुए। काँची का विश्वविद्यालय दक्षिण भारत में आर्य-संस्कृति के प्रसार का केन्द्र-स्थान बना और स्वयं काँची नगर हिन्दुओं के सात तीर्थ-नगरों में एक माना जाने लगा। परन्तु पल्लव-शासक धार्मिक दृष्टि से उदार थे। जैन और बौद्ध धर्म के प्रति उनका व्यवहार सहिष्णु था। उनके समय में जहाँ शैव और वैष्णव साहित्य की प्रगति हुई और अनेक हिन्दू सन्त हुए, वहाँ जैन और बौद्ध धर्म भी संरक्षण प्राप्त करते रहे।

पल्लव-शासकों के समय साहित्यिक प्रगति हुई। काँची के विश्वविद्यालय ने इस प्रगति में बहुत सहयोग दिया। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् दिग्नाग कुछ वर्षों तक काँची के विश्वविद्यालय में रहा था। पल्लव-शासकों में कुछ स्वयं विद्वान् हुए और सभी ने विद्वानों को आश्रय दिया। सम्राट **महेन्द्रवर्मन् प्रथम** ने *मत्तविलास-प्रहसन* की रचना की थी। उक्त काव्य में उसने एक कापालिक एवं उसकी पत्नी बौद्ध-भिक्षुणी तथा पाशुपत सम्प्रदाय के एक अनुयायी के माध्यम से तत्कालीन बौद्ध एवं शैव धर्मों में प्रचलित तन्त्रवाद और पंचमकारों के गुण-दोषों का वर्णन किया है। सम्राट सिंहविष्णु ने समकालीन विद्वान् **भारवि** को अपने दरबार में आने के लिए आमन्त्रित किया था। जिसने सुप्रसिद्ध संस्कृत महाकाव्य *किरातार्जुनीयम्* की रचना की थी। पल्लव शासक नरसिंहवर्मन् प्रथम भी साहित्यकारों का संरक्षक था। उसके राज्याश्रय में ही महाकवि **दण्डिन** ने *काव्यादर्श* एवं *दशकुमारचरितम्* नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की थी। पल्लव-शासकों के समय में संस्कृत के अतिरिक्त तमिल साहित्य की भी प्रगति हुई।

सुदूर दक्षिण में पाषाण-वास्तुकला का आरम्भ पल्लव-शासकों ने किया और उनके संरक्षण में अनेक मन्दिर पहाड़ों की चट्टानों को काटकर बनाये गये जिनमें विष्णु, शिव, ब्रह्मा तथा हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गयीं। पल्लव-वास्तुकला का विकास धीरे-धीरे हुआ। विभिन्न शासकों के समय में जो परिवर्तन समय-समय पर इसमें हुए उनके कारण उनको चार भागों में बाँट दिया गया है। सम्राट महेन्द्रवर्मन् प्रथम् के समय में इस वास्तु-कला का आरम्भ हुआ। इस कारण 600-625 ई. के समय में विकसित हुई *प्रथम शैली* को **महेन्द्र-शैली** के नाम से पुकारा गया। 625-647 ई. के मध्य में विकसित हुई *द्वितीय शैली* को **मामल्ल-शैली** पुकारा गया है। मामल्लपुरम् के सुन्दर मन्दिरों का निर्माण इस शैली के अन्तर्गत हुआ। मामल्लपुरम् के रथ-मन्दिर (शिव-मन्दिर), पाँच पाण्डवों का मन्दिर और वाराह-मन्दिर इस समय की कला के श्रेष्ठतम नमूने हैं। इनमें सुन्दर मूर्तियाँ और चित्र बनाये गये। त्रिमूर्ति, गंगावतरण की मूर्ति, दुर्गा-मूर्ति, वाराह-मूर्ति और पाँच पाण्डवों की मूर्तियाँ बहुत ही सुन्दर हैं। देवी-देवताओं और पशु-पक्षियों के चित्रों को यहाँ बहुत सजीवता से चित्रित किया गया है। 8वीं सदी में सम्राट राजसिंह के संरक्षण में पनपी *तृतीय शैली* को **राजसिंह-शैली** पुकारा गया। इस शैली के अन्तर्गत काँची और महाबलीपुरम् के मन्दिरों का निर्माण हुआ जिनमें काँची के कैलाशनाथ मन्दिर का स्थान प्रमुख है। *चौथी शैली* सम्राट अपराजित के नाम से **अपराजित-शैली** कहलायी। इस समय तक पल्लव-वास्तुकला का विकास पूर्णता प्राप्त कर गया। बाहसर का मन्दिर इस शैली का एक अच्छा नमूना है।

इस प्रकार, शासन, धर्म, साहित्य और कला की दृष्टि से पल्लव-शासकों ने दक्षिण भारत की सभ्यता में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सुदूर दक्षिण तक आर्य अथवा हिन्दू सभ्यता को पहुँचाने और विकसित करने में पल्लव-वंश का भाग प्रमुख रहा। दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय सभ्यता के प्रसार का कार्य भी पल्लवों के समय में हुआ।